को त्रिआयामी बनाते हैं । इस त्रिआयामी दृष्टि से ही रचनाकार में वह मूल्य बोध उत्पन्न होता है जिसके सम्बंध में कहा गया है- 'लक्ष्मीनारायण लाल की पिछले तीन -चार साल में छपी कुछ पुस्तकें देखीं, और फिर करीब से उनको खुद को देखा तो मुझे लगा कि मैं पुस्तकें नहीं, एक शीशे में पड़ती परछाईं देख रहा हूँ लेखक के जीवन, चिन्तन और दिमाग की । मुझे ऐसा लगा कि जैसे वे जीवन से ज्यादा आदमी को बीच में रखकर सोचते और लिखते हैं, यानि आदमी में जीवन की चेतना हो या न हो, आदमी उनके लिये मूल्य बन गया है और वह भी अंतिम मूल्य ।[1]

1- कृतिकार लक्ष्मीनारायण लाल- 'सत्य का दर्शन कर सकूँ' - नेमिशरण मित्तल- पृ0 32

Chapter-2

द्वितीय अध्याय

लाल के नाटकों में रचनात्मक-धरातल की विकास-प्रक्रिया

एवं

उनके नाटकों का विभाजन

डा0लक्ष्मीनारायण लाल की बहुमुखी रचनाशील प्रवृत्ति का एक महत्वपूर्ण कोण है उनके द्वारा रचा गया विपुल नाट्य साहित्य । यह नाट्य लेखन विगत तीन दशकों की एक लम्बी यात्रा तय करके आज तक की स्थिति पर पहुँचा है । 'ताजमहल के आँसू' और 'अन्धा कुआँ' इस यात्रा का आदि है और 'खेल नहीं नाटक' एवं 'सगुण पंछी' इसकी वह सीमा जहाँ पहुँचकर वस्तु और रंगरूप दोनों स्तरों पर उसने अपना नाट्य गत मूल्य प्राप्त कर लिया है । प्रारम्भ से लेकर आज तक के नाटकों (और एकांकियों को भी) को लक्ष्य किया जाय तो यह तथ्य देखने में आता है कि उनके नाटक विभिन्न काल खण्डों में विशिष्ट रचनात्मक धरातल पर खड़े हुए हैं । उनकी यह कालगत एकरूपता इस तथ्य को भी उजागर करने वाली है कि हर काल खण्ड में नाटककार एक विशेष मानसिक चिन्तन प्रक्रिया से गुजर रहा था। यही चिंतन उनके नाटकों में काल खण्ड के वैशिष्ट्य के साथ मुखरित हुआ है । मनुष्य का चिंतन बाह्य परिस्थितियों से द्वारा किन्हीं अंशों में प्रभावित होता ही है । बल्कि रचना में निहित यह परिवेशगत प्रभाव ही उसे समसामयिक भी बनाता है । फलस्वरूप समसामयिकता के इस गुण को डा0 लाल के नाटकों में रचनात्मक धरातल की अधोलिखित विकास प्रक्रिया के रूप में लक्ष्य किया जा सकता है -

कालखण्ड	नाटक	कालखण्ड में रचनात्मक धरातल का विकास प्रक्रिया का रूप
1951 से 1960 तक	अंधा कुआ, सुन्दर रस, मादा कैक्टस, सूखा सरोवर, तीन आँखों वाली मछली ।	अयथार्थ धरातल
1961 से 1965 तक	रक्त-कमल, रातरानी, नाटकतोता, मैना, दर्पण ।	यथार्थ धरातल
1966 से 1970 तक	सूर्यमुख, कलंकी, मिस्टर अभिमन्यु ।	आनुभूतिक धरातल
1971 से 1975 तक	करफ्यू, स अब्दुल्ला दीवाना, व्यक्तिगत, गुरु, नरसिंह कथा	कसौटी का धरातल

1976 से वर्तमान	एक सत्य हरिश्चन्द्र, यक्ष प्रश्न, गंगा-माटी, सबरंग मोहभंग, संस्कार ध्वज (पंच-पुरुष), सगुन-पंछी, राम की लड़ाई।	अभिव्यक्ति का धरातल।

उपर्युक्त विभाजन में यह तथ्य भी दृष्टव्य है कि काल खण्ड विशेष के नाटकों के समकालीन जो इतर साहित्य रचा गया, उसमें भी उपर्युक्त रचनात्मक धरातल की ही विकास प्रक्रिया को देखा जा सकता है। उदाहरणार्थ 1951 से 1960 के मध्य रची कहानियों का संग्रह 'सूने आँगन रस बरसै' अयथार्थ धरातल की विकास प्रक्रिया को पुष्ट करता है, 1966 से 1970 के मध्य लिखे गये उपन्यास 'मन वृन्दावन' और 'काले फूल का पौधा' आनुभूतिक धरातल की विकास प्रक्रिया को ही प्रकट करनेवाले हैं, 1971 से 1975 के मध्य लिखे गये उपन्यास 'रूपा जीवा' 'बड़ी चंपा छोटी चंपा' 'प्रेम अपवित्र नदी', 'हरा समन्दर गोपीचन्दर' 'वसन्त की प्रतीक्षा', 'श्रृंगार' में अभिव्यक्ति के लिये तैयार की जा रही कसौटी के धरातल को लक्ष्य किया जा सकता है एवं 1976 से आज तक के मध्य लिखी विविध रचनाएं, 'देवीना', 'आधी रात से सुबह तक', 'अंधकार में एक प्रकाश जयप्रकाश' और 'निर्मूल वृक्ष का फल' में अभिव्यक्ति के धरातल को खोज निकाला गया है।

सृजन की दिशा में अपना स्थान बनाने की महत्वाकांक्षा का ही परिणाम था सन् 1952 में पारित एवं प्रकाशित लाल का शोध प्रबंध 'हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास'। यह एक प्रकार से उस भूमि की तलाश थी जिस पर खड़े होकर आगे का रास्ता खोजा जाना था। इस दृष्टि से यह शोध प्रबंध 'सृजन का लायसेन्स' था जिसे प्राप्त कर लाल सृजन की दिशा में आगे बढ़े। सन् 1951 से सन् 1960 तक का संपूर्ण दशक इसी प्रक्रिया से गुजरने का परिणाम है। प्रारंभ में यह गति बहुत धीमी रही है जिसका प्रमाण यह है कि दस वर्ष की इस लम्बी अवधि में नाटकों की रचनाओं के मुख्य अन्तराल के प्रकाशन के पश्चात क्रम से 'अन्धा कुआं' (मंचन वर्ष 1955), 'सुन्दर रस (मंचन वर्ष 1958), 'मादा कैक्टस' (मंचन वर्ष 1960)

सूखा सरोवर(मंचन वर्ष 1960) और तीन आंखों वाली मछली (प्रकाशन वर्ष 1960) दशक के संपूर्ण नाटक हैं ।

अयथार्थ धरातल :

उपर्युक्त दशक में रचित संपूर्ण नाटक एक प्रकार का अयथार्थ धरातल स्वयं में समाहित किये हुए हैं । यह अयथार्थ इस काल खंड के नाटकों में अनेक रूपों में देखी जा सकती है । प्रेम, सौंदर्य, रोमानीपन इस अयथार्थ धरातल का एकपक्ष है और सामाजिकता दूसरा पक्ष । प्रेम ,सौंदर्य और रोमानीपन के चिंतन में रचनाकार की दृष्टि गहन जीवनदर्शन की तलाश में भटक कर रह जाती है । उदाहरण स्वरूप 'सूखा सरोवर' में नाटककार जीवन में प्रेम तत्व की स्थापना करना चाहता है । ऐसे प्रेम की स्थापना जो केवल दान ही करता है, प्रतिदान की इच्छा नहीं रखता । वह ऐसा दान है जो स्वार्थ और हिंसा को भी पराभूत करता है । नगरी का छोटा राजा और पुरोहित उसी स्वार्थ और हिंसा का प्रतीक हैं जिन्होंने उनके अंदर रागात्मक धरातल की हत्या कर दी है । उस जीवन जल की हत्या कर दी है जो एकप्रकारसे उनका प्राण तत्व है और इसीलिये वह आत्महत्या है- आत्म-हत्या राजकुमारी ने नहीं की प्रत्युत पुरुष और राजकुमारी के जीवन्त प्रेम के मध्य काल रूप बन राजा औरपुरोहित ने की है । उसी प्रेम प्यासी कुमारी को जब पुरुष का उत्सर्ग प्राप्त होता है तो जैसे उसका मरुभूमि बना हृदय हरा भरा हो जाता है, सरोवर सिक्त हो उठता है । प्रेम और उत्सर्ग ही जीवन काजल हैजिसके अभाव में आज का मनुष्य एकदूसरे के रक्त का प्यासा होने को अभिशप्त है । यहांप्रश्न यह है कि प्रेम के सम्बंध में की गई इस दार्शनिक व्याख्या में नाटकार कितना सफल है ? नाटक में प्रारंभ से ही स्थान- स्थान पर प्रतीकों का सरलीकरण नाटक के कथ्य में निहित रहस्यात्मकता को बांध नहीं पाता, वह खुल-खुल जाता है और इस प्रकार कथ्य और चरित्र प्रारंभ से ही स्पष्ट होकर नाटक की रोचकता में व्यवधान उत्पन्न करने लगते हैं । 'आंख का आंसू' रूढ़ अपमान है जो प्रेम का व्यंजक है । इसी कारण वह नाटक में किसी मौलिक कल्पना को जन्म नहीं देता प्रत्युत प्रारंभ में

अपनी ऋजु उद्भावना से नाटक के मन्तव्य को बड़े सीधे सपाट ढंग से प्रकट कर देता है। यही सीधाप्रकाशन भाषा के रोमानी और आलंकारिक शिल्प की चाशनी में घुलकर अथार्थ धरातल की सृष्टि करता है। उपर्युक्त ऋजु उद्भावना और भाषा की रोमानी और आलंकारिक शिल्प के नाटक को निम्नांकित अंशों में दृष्टिगोचर होता है -

'सूख गया क्यों, देखा किसने। मन का मोती, आंख का पानी। प्रभु नयनन जो आंसू बरसा। वहजीवन सरवर का पानी। डूब गया क्यों खोयाकिसने। मन का मोती, आंख का पानी। मेघ मरूत पानी के वीरन। चांद सुरुज सागर के पानी। रूठ गया क्यों बांधा किसने। मन का मोती, आंख का पानी।[1]

+ + +

'देखो सरोवर क्षितिज पर। नया सूरज। नई चन्दा। देखो सरोवर के अंक में। कमल की सेजा लगी है। पुरुष की रानी। प्रिया बैठी है। अब भी बैठी है विरहिनी। और पुरुष की आत्मा। पहरा दे रही है। सरोवर के चारों ओर'[2]

सौंदर्य सम्बंधी धारणा की ही एक और अभिव्यक्ति है 'सुन्दर रस' किन्तु वहां विशुद्ध प्रहसनात्मक मूड है, किसी प्रकार की गंभीर अनुभूति नहीं है। यह नाटक दर्शक सापेक्ष इतना अधिक है कि चिंतन के धरातल पर किसी यथार्थ दृष्टि की प्रतिष्ठा नहीं करता, केवल 'देखने' और उससे 'मनोरंजन' पाने की शर्त को पूरा करता है। यही नहीं, 'सुन्दर रस' का पाठक और दर्शक पर जो प्रभाव पड़ता है उसका आधार पं0 कविराज द्वारा निर्मित वह सुन्दर रस नामक औषधि है जिसके नामकरण में प्रतीक या बिंब परक अर्थ के स्थान पर नाटककार की अभिधामूलक दृष्टि हीरही है।यह एकप्रकार से सीधी कथन शैली का एक कमजोर उदाहरण है।

1- सूखा सरोवर- पृ0 11

2- वही- पृ0 122

सन् 1951 से 1960 तक के काल आयाम की सबसे अधिक महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं 'अन्धा कुआँ' और 'मादा कैक्टस'। 'अन्धा कुआँ' लाल की रचनाशील मानसिकता में अनुस्यूत लोक तत्व की व्यंजना करनेवाला नाटक है। इस लोक तत्व का स्त्रोत उनके चारों ओर फैला ग्रामीण परिवेश है। इस ओर संकेत करते हुए उन्होंने नाटक में समर्पण की ये पंक्तियाँ लिखी हैं - 'जलालपुर की सूका को समर्पित जो अब तक जीवित है।' तात्पर्य यह कि 'अन्धा कुआँ' का कथ्य उनका देखा और अनुभव किया गया सत्य है जिसे नाट्याभिव्यक्ति मिली है। लाल इस नाटक में सामाजिक चेतना के यथार्थ धरातल पर अपना पैरा जमाना प्रारंभ करते प्रतीत होते हैं। इस दृष्टि से यह नाटक युग-संक्रमण का द्योतक है। यहाँ विचारणीय यह है कि अयथार्थ से यथार्थ की ओर बढ़ने की इस प्रक्रिया की प्रकृति क्या है ? नाटक में सूका और भगौती का चित्रण दो अतिवादी मानव प्रकृति के रूप में किया गया है। भगौती का चरित्र तो अमानुषिकता की सीमा तक पहुँच गया है। इसी कारण नाटक का प्रभाव आवेग के द्वारा संचालित होता है, समस्या का सार्वकालिक समाधान नहीं होने पाता। नाटक का अन्त सूका के उत्सर्ग और भगौती के हृदय परिवर्तन द्वारा अति भावुकता या नाटकीयता के धरातल पर होता है जो उसके अयथार्थ रचना भूमि पर स्थित होने का परिणाम है। इसीलिये नारी और पुरुष के मध्य सामाजिक सम्बंधों की समस्या के सुलझाव का कोई सर्वग्राह्य मार्ग नहीं निकल सकता। सूका का 'विरोध का माध्यम स्वीकार' जैसा सिद्धान्त यथार्थ नहीं है क्योंकियह तो सूका जैसी प्रत्येक नारी को आत्म समर्पित और आत्म-हन्ता होकर जीने को बाध्य करता है। ऐसा निर्णय भारतीय नारी की सामाजिक चेतना के समाधान की खोज में एक शिथिल प्रयास है। 'भूल जाओ, माफ करो' आज के नारी जागरण के संदर्भ में अवास्तविक समाधान है। नारी पर पुरुष द्वारा किये गये अत्याचार का ऐसा समाधान उन्नीसवीं शताब्दी की नारी का हो सकता है, इस उत्तरशती की नारी का नहीं।

इसी युग में 'तीन आँखों वाली मछली' का भी प्रकाशन हुआ। इस नाटक की रचना का उद्देश्य अवश्य ही नाटककार के अनुसार तटस्थ भाव से भविष्य

~~इसलिए-युग-में--तीन-आंखों-वाली-मछली~~
और विकासकी सम्भावना है खोजने वाली शक्ति(जिसे मछली की तीसरी आंख के प्रतीक द्वारा स्पष्ट किया गया है) को सामने लाना है लेकिन इसके लिये नाटककार ने 'छोटे मन और छोटा यथार्थ दृष्टिकोण लेकर नहीं ~~बी~~ बल्कि बहुत बड़े मन से, छोटे यथार्थ में बड़ी कल्पना का अनुरंजन कर यथार्थ को कल्पना और मिथक के साथ मिलाया है जो रचनात्मक धरातल पर उसकी अयथार्थता का द्योतक है।[1] एडवोकेट श्यामबिहारीदास का मृत्यु भय, उससे संघर्ष और उससे मुक्ति उनके चरित्र को महामानव का बिंब प्रदान करता है। यह भी नाटक का अयथार्थ धरातल ही है।

'अन्धा कुआं' में नारीऔर पुरुष के मध्य सम्बंधों का जो स्वरूप ग्रामीण परिवेश के मध्य चित्रित किया गया है वही 'मादा कैक्टस' में नागर जीवन के परिवेश में है। निस्संदेह मादा कैक्टस' में नारी के मानसिक द्वन्द्व और चिन्तन के धरातल को प्राप्त हुई है। इसका कारण सूका, मीनाक्षी और सुजाता में शैक्षिक और वैचारिक धरातल का सोपानगत अन्तर हो सकता है। विरोध का रूप तीनों में अलग अलग है लेकिन सूका से सुजाता तक का यह चरित्र संघटन उसके अयथार्थ से यथार्थ धरातल पर युगानुरूप समाधान देने की क्रमिक वैचारिक प्रक्रिया का परिणाम है। सूका के माध्यम से नाटककार की नारीसमस्या के समाधान की अग्राह्य और आलोच्य 'एप्रोच' पर ऊपर विचार किया गया। सूका में मौन समर्पण है। पतिनामधारी राक्षस के समक्ष समर्पित होना ही उसका विरोध है। उसके व्यक्तित्व में समर्पण है। आगे चलकर यही सूका विवेक-सम्बद्ध हो 'मादा कैक्टस' में बेस मीनाक्षी जैसे चरित्र के रूप में समक्ष आती है। अरविन्द द्वारा की गई उपेक्षा मीनाक्षी को अपमानित करती है, वह छटपटाती है किन्तु उसकेसंस्कार

1- देखिये- तीन आंखों वाली मछली-अन्तरंग- पृष्ठ-ज

(जो उसने सूका से ही प्राप्त किये हैं) उसकेविरोध को मुखर अभिव्यक्ति नहीं दे पाते। यही अपमान हत-सर्वस्वा हो सुजाता के माध्यम से फूट पड़ा है। सूका का ठण्डा विरोध और मीनाक्षी का भारतीय नारी के संस्कारों की राख के अंदर सुलगता विरोध सुजाता में ज्वालामुखी बनकर फूटता है।यही वह यथार्थ धरातल है जो वस्तुत: 'मादा कैक्टस' को संक्रमणाकी संज्ञा देता है। 'अन्धा कुआ' का यथार्थवाद एक प्रयत्नहै किन्तु समस्या और उसके समाधान की ऋजुता के कारण वह लाल के युग बोध की सही अभिव्यक्ति नहीं बनपाता। मादा कैक्टस' में शिल्प की अयथार्थता और प्रयोगवादिता के उपरान्त कथ्य का यथार्थउसे लाल की नाट्य चेतना के आगामी युग तक पहुंचा देता है।

यथार्थ धरातल :

'मादा कैक्टस' से सामने आयी यथार्थधारा का पूर्ण विकास 1951से 1960 तक के मध्य में रचे गये नाटकों में लक्ष्य किया जा सकता है। 'रक्त कमल' (1961), 'रातरानी' (1962), 'नाटक तोता मैना' (1963), 'दर्पन' (1964), कालखंड के सम्पूर्ण नाटक हैं। इन रचनाओं में लाल के रचनात्मक व्यक्तित्व में एक प्रकार की एकरूपता एवं तटस्थता का बोध होता है। इन रचनाओं में पूर्व युग म का प्रभाव कहीं-कहीं दृष्टिगोचर अवश्य होता है लेकिन राष्ट्रीय, सामाजिक एवं अन्यान्य विषयों पर लेखक की दृष्टि में यथार्थ चित्रण के प्रति आग्रह बहुत अधिक रहा है। अभिव्यक्ति का रूप ऋजु होने पर भी विषय प्रतिपादन जीवन दर्शन की गहनतातक जा पहुंचा है।

यथार्थ धरातल के इस युग का प्रथम संपूर्ण नाटक है 'रक्त कमल'। शीर्षक की प्रतीकात्मकता से कथ्य के बोझिल होने का भ्रम हो सकता है किन्तु वस्तुत: ऐसी बोझिलता पूरे नाटक में कहीं नहीं है। आज के युग में शोषक और शोषित का संघर्ष जिस क्षिप्र गति के साथ चल रहा है वहनाटक में कमल और महावीर द्वारा दर्शाया गया है। इसी संघर्ष के मध्य राष्ट्र की चेतना का जागरण बोध भी कराया जाता है जिसके लिये अगस्त्य के चरित्र का संघटन किया गया है।

राष्ट्र के सम्मुख समस्या नहीं, बुनियादी मूल्यों के शाश्वत प्रश्न हैं-इस बोध पर आधृत यह नाटक यथार्थ दृष्टि का परिचायक है। तथापि कहीं-कहीं वर्ग संघर्ष के प्रश्न पर कमल का आक्रोश इतना उग्र हो जाता है कि वह अपना राष्ट्रीय सन्दर्भ खो देता है और साम्यवाद का मानस पुत्र बनकर सामने आता प्रतीत होने लगता है। इसीकारण ऐसे स्थलों पर नाटक अपने राष्ट्रीय मूल्यों से च्युत होता सा प्रतीत होता है एवं अयथार्थ संदर्भ खड़ा करने लगता है। वैसे नाटक की मूल चेतना में निहित राष्ट्रीय एकता आस्त्य द्वारा गाये इस गीत में प्रकट हो ही जाती है- 'जागे नवभारतेर जनता। एक जाति एकप्रान। एकता। हे मोरचित्त, पुण्य तीर्थ जागो रे धीरे। एई भारतेर महामानवेर सागरतीरे। 'रातरानी' की समस्या जितनी ही नारी पुरुष के सामाजिक सम्बंधों से है उतनी ही वहपति-पत्नी के मध्य 'आत्म-दर्शन' से भी सम्बद्ध है। समस्या की प्रस्तुति के आधार के लिये प्रेम के किसी रोमानी या वायवीय पक्ष को आधार नहीं बनाया गया है। प्रत्युत वैवाहिक जीवन की कसौटी तैयार की गई है। इसी कारण जयदेव, कुन्तल और निरंजन का त्रिकोण पारस्परिक सम्बंधों में किसी दुराव की अपेक्षा नहीं करता बल्कि खुलकर अपनी वस्तुस्थिति का लेखा-जोखा करने का अवसर पाता है जो एक यथार्थ दृष्टि है -

जयदेव- यह विवाह भी एकअजीब चीज है।
निरंजन- मैं क्या बताऊं ? मैं इसका रंचमात्र भी अधिकारी नहीं हूं।
कुन्तल- विवाह स्त्री और पुरुष के आत्म दर्शन के लिये था।
जयदेव- था! --- अब नहीं हैक्या ?
कुन्तल- अब बीच में पदार्थ आ गया है।[1]

\+ \+ \+

निरंजन- एक बातपूछना सकता हूं। (रुककर) उन खतों को आप क्या करेंगी ? वे खत इतनेदिनों तक मेरे पास थे, तभी यहपूछने का मोह हो रहा है।

1- रातरानी- पृ0 64

कुन्तल- जय को पढ़ने को दूँगी ।

निरंजन- क्यों ?

कुन्तल- सिर्फ पति के पढ़ने लायक ही वे खत हैं ?

निरंजन- सिर्फ पति के पढ़ने लायक । तो वे खत क्या आपने मुझे नहीं लिखे थे ?मुझे यानि निरंजन नामक व्यक्ति को ।

+ + +

निरंजन- फिर किसे लिखे थे आपने ।

कुन्तल- बता दूँ । वे खत---(रुक जाती हैं) वे खत पत्नी होने वाली एक कुंआरी लड़की की लिखे- और से पति होनेवाले एक पुरुष को लिखे गये थे ।[1]

प्रेम और विवाह के मध्य उक्त जीवन मूल्य पवित्रता के बाधक तो है ही, शुद्ध वैचारिक मनोभूमि के भी परिचायक हैं जो प्रेम और विवाह जैसे विषयों को यथार्थपरक दृष्टि देते हैं । 'रातरानी' में इसके अतिरिक्त अन्य सवाल भी उठाये गये हैं - नारी की सामाजिक- भूमिका, मालिक-मजदूर संघर्ष और इनकी प्रस्तुति में एक प्रकार की नाटकीय गति है ।इसी से हमारे समाज का यथार्थ चित्र उपस्थित होता है । 'ऐसा ब ही जीवन में होता है'- यही दृष्टि नाटक को यथार्थ धरातल पर ला खड़ा करती है । इस यथार्थ दृष्टि के मध्य नाटककार अपने चरित्रों द्वारा 'जो अप्राप्य है'- को पकड़ने की चेष्टा का वर्णन करता है -सुनसान महल में उड़ते हुए कागज के पन्नों का कुन्तल द्वारा पकड़ने का असफल प्रयत्न' जीवन के यथार्थ को प्राप्त करने की अदम्य लालसा का ही प्रमाण है । इसी काल खण्ड की एक अन्य नाट्य-कृति 'दर्पन' व्यक्ति को आत्म बोध करानेवाली एक यथार्थवादी कृति है । इस नाटक में सद् और असद् प्रवृत्तियों को चित्रण का प्रश्न जितना महत्वपूर्ण नहीं है उतना महत्वपूर्ण है इच्छित की खोज का प्रयत्न और उसमें प्राप्त असफलता । प्रयत्न ही वह आधार शिला है जिस पर खड़ी 'पूर्वी' जीवन के प्रवृत्तिपरक मूल्यों को अपनाने की यथार्थदृष्टि का वरण करती है । 'पूर्वी' की विडम्बना यह है कि वह मायावी शक्तियों द्वारा छली जाती है । समाज उसकी आकांक्षा का गला

1- रातरानी-पृ0 65 अंक दो,दृश्य एक

घोट देता है। नाटक का यह अन्त एक यथार्थवादी अन्त के रूप में सामने आता है। नाटक में दो प्रकार का द्वन्द्व है और दोनों ही द्वन्द्वों की दृष्टि यथार्थवादी है। एक ओर 'पूर्वी' के रूप में सहज प्रवृतिमार्गी जीवन जीने की ललक और दूसरी ओर समाज द्वारा आरोपित जीवन जीने की अभिशप्त स्थिति। नाटक का अन्त इस दूसरे यथार्थ की विजय की सूचना देता है लेकिन उससे उत्पन्न व्यक्ति की करुण-अवस्था 'पूर्वी' द्वारा 'दर्पन' के असहज स्वीकार के रूप में चित्रित हुई है। आज के मनुष्य की यही नियति है कि वह अभीष्ट की तलाश में भटककर असफल होने जाने पर अतीत के रेगिस्तान में शुतुर्मुर्ग की तरह सिर गड़ाकर आत्म विस्मृत हो जाता है। पूर्वी के ये दो उद्गार क्रमश: उसकी 'अपेक्षाओं' और 'विडम्बनाओं' का यथार्थ चित्रण हैं -

'पर सुजान भैया। सच बात यह है कि मैं अपने आपको देखना नहीं चाहती। मैं चाहती हूं कि मैं अपनी आँखों से ओझल हो जाऊं। मैं सिर्फ वही रहूं जिसे तुम सब ने इतना प्यार, इतना विश्वास दिया है।[1]

\+ \+ \+

हरिपदम- नहीं, तुम मेरे लिये आश्चर्य नहीं हो।

पूर्वी- पर मैं हूं। इसे मैं तोड़ नहीं सकी। इसे मैं जला भी न सकी। और अब मुझे जाना है।[2]

आनुभूतिक धरातल :

सन् 1965 की विदेश यात्राओं ने नाट्य लेखन और रंगमंच के स्तर पर लाल को प्रेक्षण एवं निरीक्षण के व्यापक अवसर प्रदान किये थे। इनसे प्राप्त आनुभूतिक धरातल को यदि युग सीमा में बांधा जाय तो वह सन् 1966 से सन् 1970 तक का समय कहा जा सकता है। 'सूर्यमुख' (1968), 'कलंकी' (1969) तथा 'मिस्टर अभिमन्यु' (1969)

1- दर्पन- पृ0 54

2- वही- पृ0 74

इस युग के नाटक हैं। ये नाटक विविध चिन्तन कोणों से प्रेक्षक और पाठक के मानस को झकझोरते हैं। इस धरातल पर ऐसा प्रतीत होता है मानों लाल प्रथम बार सामाजिक सम्बंधों और मनुष्य के क्रिया-कलापों के प्रति जागरूक हुए हैं। राजनीतिक स्तरपर समसामयिक बोध उनकी रचनाशीलता को एक महत्वपूर्ण आयाम प्रदान करता है। राजनीतिक स्थिति के बोध से उत्पन्न छटपटाहट भी उन्हें सोचने को बाध्य करती है। पौराणिक कथ्य इसके लिये माध्यम का कार्य करते हैं। सत्य से सीधा साक्षात्कार कर पाने की असामर्थ्य ही उन्हें पौराणिक माध्यम की ओर खींचती है। माध्यम की खोज करते नाटककार में यही अभिव्यक्ति के पूर्व की छटपटाहट है। प्रेम के सम्बंध में अब उनके जीवन मूल्य पूर्वकी भाँति रोमानी नहीं रह गये, प्रत्युत उनमें घृणा, संशय, स्वार्थ, जैसे विपरीत मूल्यों का भी योग हो गया है। 'अन्धा कुआ' की भाँति विरोध का तरीका स्वीकार न रखकर विरोध के ही रूप में समक्ष आया है और उसी में से प्रेम के साक्षात्कार की शक्ति उत्पन्न होती है। तात्पर्य यह कि इस युग में प्रेम केवल भाव नहीं प्रत्युत बौद्धिक चिन्तन की प्रक्रिया को भी समाहित करके चलता है।

नाटककार लाल की अनुभूति और उससे उत्पन्न चिन्तन[1] की प्रतिनिधि कृति है 'सूर्यमुख'। 'सूर्यमुख' का तात्पर्य है आत्म साक्षात्कार किन्तु साक्षात्कार अन्तत: होता अनुभवों का परिणाम ही है।

प्रद्युम्न और वेलुरती यहाँ उसी अनुभव की प्रक्रिया से गुजरे हैं। अत: संपूर्ण राजनीतिक, सामाजिक और पारस्परिक दंश जो उन्हें लगता है, उसे वे अनुभव तो करते हैं किन्तु अभिव्यक्त नहीं करते। उनकी प्राप्ति भी मूक है जिसका पता सिवाय उनकेकिसी को नही लग पाता। अत: उनका साक्षात्कार आनुभूतिक ही है, अभिव्यक्तिपरक नहीं। उनके उत्सर्ग में इसीलिये अनुभूति और अभिव्यक्ति के बीच की

1- एक तरफ खेल, दूसरी ओर रिफलेक्शन'-लाल की चिन्तन प्रक्रिया यही है। (लाल से साक्षात्कार)

दीवार धीरे-धीरे ढह रही है- 'काले पर्वत के गलने के रूप में।[1] उनका प्रेम भी मन-वृन्दावन की भाँति संशय और अविश्वास के बीच अन्तत: अपना मार्ग निकालता है। यहाँ साक्षात्कार है अपने आत्म में बिंधे संशय और अविश्वास से और उससे उत्पन्न अनुभव है प्रेम की पुनर्प्राप्ति। इस रूप में एक ओर साक्षात्कार अनुभव का परिणाम है तो दूसरी ओर अनुभव भी साक्षात्कार का परिणाम बनकर आता है। सामाजिक दृष्टि से माँ-पुत्र के सम्बंधों का औचित्यानौचित्य भी इसी अनुभूति के धरातल पर कसा जाकर निर्णय पाता है। राजनीतिक स्तर पर नाटककार राष्ट्रीय परिस्थितियों के सन्दर्भ में किये गये प्रत्यक्ष अनुभवों को समक्ष करता है। ये अनुभव ही महाभारतोत्तर युग का सन्दर्भ लेकर प्रकट हुआ। स्वातंत्र्योत्तर भारत की विश्रृंखलित परिस्थितियों को नाटककार ने जैसा देखा, अक्षरश: कृति का रूप दे दिया है। इन परिस्थितियों के अंकन के पीछे नाटककार की वाणी अभिव्यक्ति के लिये छटपटाती प्रतीत होती है-

दुर्गपाल- आपमें वह सहानुभूति नहीं रहीया कि मनुष्य से परिचित होने का साहस नहीं रहा। (रुककर) इस नगर में आकर आपको सब कुछ विपरीत दिखा होगा- समुद्र और यदुवंशियों का अमर्यादित होना, मानव सम्बंध और प्रकृति में आश्चर्य घटित होना पर यथार्थ का यह केवलएक पक्ष है।

अर्जुन- नहीं, यही संपूर्ण यथार्थ है।

दुर्गपाल- (हंस पडता है,) क्षमा हो, तभी यहाँ का मनुष्य आपको अपरिचित लगता है।

अर्जुन- यह सच है, इस नगर में आकर जैसे मैं स्वयं अपने आपसे अपरिचित हो गया हूं।

दुर्गपाल- यह नया महाभारत है, महाराज। यहाँ वे कर्ण और भीष्म नहीं, वह कौरव सेना भी नहीं पर ये यदुवंशी उसी महाभारत की रचना हैं। प्राचीन बहुत

1- सूर्यमुख- पृ० 118

प्राचीन परंपरा और अतीत के खण्डहर की छाया में उगी हुई पौध की तरह ये यदुवंशी। अपनी इस नयी फसल के बारे में कृष्ण को पता था, तभी वह महाभारत ---।[1]

स्वतंत्रता के दो दशक पूरे होते न होते भारतीय राजनीति में लोकतंत्रीय पद्धति के ऊपर साम्राज्यवादी प्रवृत्ति की विजय जोर पकड़ने लगी थी। यथास्थितिवादी राजनीति परिवर्तन न हो जिससे सत्तालोलुपों पर आंच आये- इस हेतु संपूर्ण राजनीतिक वातावरण में एक ऐसी मानसिकता और आकाशकुसुम दिखाने की प्रवृति ने जन्म लिया। जिससे साधारण जनता हमेशा भविष्य जीवी होकर वर्तमान के कष्टों को भोगती रहे। यों भी, सुन्दर भविष्य की कल्पना के समक्ष वर्तमान के कष्ट बहुत लघु प्रतीत होते हैं। इसी कारण जनता वर्तमान शासक के प्रति विश्वास या अविश्वास प्रकट करने के अपने अधिकार को ही नहीं पहिचान पाती, प्रश्न करने का साहस ही नहीं जुटा पाती क्योंकि शासक वर्ग तो पूर्व ही उसे स्वप्नजीवी या भविष्यजीवी बनाकर अपनी सत्ता की गारण्टी प्राप्त कर लेता है। भारतीय राजनीति में तब (जिस समय 'कल्की' रचा गया) ऐसे ही 'कल्की' के अवतार की अवश्यंभाविता बताकर शासन ने जनता को प्रश्नहीन और यथास्थितिवादी बनाकर छोड़ दिया था। नाटक में जनशक्ति को इस प्रकार काल्पनिक स्थितियों में छोड़कर शासक के निश्चिन्त हो जाने की स्थिति को नाटककार ने अनुभूत किया और उसे 'मिथक' के संदर्भ में प्रस्तुत कर दिया। 'मिथक' का दामन थामना ही इस तथ्य का परिचायक है कि लेखक अनुभूत को अभिव्यक्त कर पाने के लिये माध्यमों की तलाश करता है, उसके अनुभव 'अभिव्यक्ति के संकट' से गुजर रहे हैं। अभिव्यक्ति की छटपटाहट रूप के माध्यम से दर्शायी गई है किन्तु वह भी निरर्थक सिद्ध होती है जब उसकी हत्या हो जाती है। स्वतंत्रता के पश्चात अभिव्यक्ति के स्वातंत्र्य पर जिस कुशलता से प्रतिबद्धता आई है- लाल के 'सूर्यमुख' और 'कल्की' नाटक इसके प्रमाण हैं।

1- सूर्यमुख-पृ0 64-65

नाटककार के मन का संघर्ष कैसे, किस रूप में अभिव्यक्ति हो, यही संकट यहां है- नाटककार का अभीष्ट 'मन का संघर्ष'' अपनी अधिकाधिक विभीषिका में साकार होना है। नि:सन्देह, 'सूर्यमुख' के बाद 'कलंकी ' की रचना में आनुभूतिक स्तर पर कहीं अधिक तिक्त साक्षात्कार है।

आनुभूतिक धरातल पर खड़े होकर लेखक ने 'सूर्यमुख ', 'कलंकी' इत्यादि में व्यापक निरीक्षण के मस्तिष्क पर हुए रिफलेक्शन को ज्यों का त्यों उतार कर रख दिया है। ये अनुभव विचार(thought) और जीवन दर्शन (Ideology) को संपुष्ट करते हैं किन्तु इनसे व्यावहारिक जीवन की कसौटी तैयार नहीं होती। जीवनानुभव जब तक अपने ही परिवेश और अपनी ही परिस्थितियों की कसौटी पर खरे- खरे न उतरें तब तक वे विश्वसनीय नहीं बनते। विचार, जीवन दर्शन और विश्वास - ये तीनों मिलकर ही आधुनिक चिन्तना को प्रेरित करते हैं।[1] इस दृष्टि से 'मिस्टरअभिमन्यु' लाल के साहित्य में आधुनिकता की महत्वपूर्ण पहिचान लेकर उभरता है। मध्यवर्गीय समाज की अपेक्षाओं और समस्याओं से जितना सामाजिक रूप से हम जुड़े हैं उतना मध्ययुगीन तांत्रिक अथवा महाभारतयुगीन समाज से नहीं। इसी कारण 'मिस्टर अभिमन्यु' में लेखक को राजनीतिक, सामाजिक जीवन से प्राप्त अनुभवों को पुष्ट करने के लिये एक कसौटी प्राप्त हुई है। यह तब और भी महत्वपूर्ण दृष्टिगोचर होने लगता है जब यह ज्ञात होता है कि 'मिस्टर अभिमन्यु' का राजन एकजीता जागता चरित्र है व्यवस्था की रीतिनीतियों का भुक्त भोगी (और स्वयं डा0 लाल के अभिन्न मित्रों में से एक)[2] 'मिस्टर अभिमन्यु ' आलोच्य युग के साहित्य में संक्रमण कहा जा सकता है।

'मिस्टर अभिमन्यु' में लाल व्यवस्था के अंदर प्रश्नहीनता और यथास्थितिवाद के स्वानुभव को व्यावहारिक रूप से जीवन में स्वयं घटते हुए देखते हैं। कलक्टर राजन

1- देखिये- The social context of modern English Literature - Basil Blackwell

2. लाल से साक्षात्कार

की आत्मानुभूति स्वयं सैदो रूपों में साक्षात्कार करती है - गयादत्त और आत्मन। इन रूपों में से किसे ग्रहण किया जाय- राजन ही नहीं, उस जैसे अनेक व्यवस्था के व्यूह में बंधे लोगों की समस्या है। इनके मध्य चयन ऐसे लोगों के नैतिक बल की कसौटी है। राजन इस कसौटी पर खरा नहीं उतरता। यही नहीं, राजन में चिंतन की शक्ति तो है किन्तु निर्णय की शक्ति का अभाव है और उसे सही दिशा-निर्देश नहीं मिल पाता। तथापि इस कृति तक आकर लाल का लेखकीय व्यक्तित्व `स्वीकार` की नैतिक दुर्बलता का त्याग कर व्यक्तित्व कोशाण पर चढ़ा देने की दिशा में कृत-संकल्प हो गया है। यह अनुभव से अभिव्यक्ति की ओर बढ़ने की यह एक प्रक्रिया है जो कसौटी का धरातल प्रदान कर अनुभव को तर्क द्वारा पुष्ट करती है।

कसौटी का धरातल :

सन् 1971 से सन् 1975 तक के मध्य लिखाये नाटक कसौटी के धरातल पर खडे हुए हैं। `करफ्यू` (1971), `अब्दुल्ला दीवाना` (1973), `व्यक्तिगत` (1975), `नरसिंह-कथा` (1975) इस युग केनाटक हैं।इनमें नाटककार ने प्रश्नों की कसौटी पर कथ्य एवं चरित्रों को कसने का प्रयास किया है। येप्रश्न आज की परिस्थितियों के सन्दर्भ में अन्ततः अनुत्तरित हैं। युग की नैतिकता, राजनीति, सत्ता, प्रेम और विवाह एवं ऐसे ही अनेक प्रश्न लेखक केचिंतन की कसौटी पर कसे जाने पर दुःखद बोध देते हैं। `करफ्यू` स्त्री- पुरुष के मध्य के सम्बंधों पर लगे करफयू का बोध कराकर उसे सहज रूप से तोडने की प्रेरणा देता है। नीति-अनीति,धर्म-अधर्म, आदिम-सभ्य इत्यादि प्रश्नोंकी कसौटीपर कसा जाते हुएनाटक का कथ्य चलता है किंतु जैसे अन्ततः नाटक केचरित्रों के `रिचुअल मंत्रों` के गान के रूप में वहपुनः क्रांति-दर्शनसे लौटकर `अपने कृत्यों पर नाटक के चरित्रों द्वारा किया गया प्रायश्चित` मात्र लगने लगता है। प्रश्न पूरे ओज के साथ उठता है लेकिन परंपराओं को तोडने के बादभी आपराधिक और प्रायश्चित के भाव के साथ समाप्त होता है। ऐसा अपराध जिसके लिये मानों उन्हें प्रायश्चित करना पड रहा है। इस नाटक की विडम्बना

यह है कि व्यक्तिगत स्तर पर हम अपने सभी प्रश्नों के सम्बंध में लिये निर्णयों को 'जस्टीफाई' कर लेते हैं। किन्तु जैसे ही हमारा वास्ता समाज से पडता है, हम सामाजिक रूप में अपने करफ्यू तोड़नेकी क्रांति को 'जस्टीफाई' नहीं करपाते। गौतम, मनीषा, संजय और कविता के अनुभव ऐसी सार्वभौमिक कसौटी तैयार नहीं कर पाते जिस पर सम्बंधों की नैतिकता के प्रश्नों का सार्वभौमिक उत्तर पायाजा सकता है। इसी नैतिकता का एकआयाम है 'अब्दुल्ला' जो हमारे समाज के हर वर्ग को चुनौती दे रहा है। 'नाटक' अब्दुल्ला दीवानों में नैतिकता केप्रतीक अब्दुल्ला की हत्या के हर वर्ग- राजनेताओंसे लेकर नौकरशाही-पुलिस, अफसर इत्यादि को न्याय की कसौटी पर कसती है और इससे एक दु:खद सत्य को प्रकट करती है। यह सत्य ही बताता है कि नैतिकता की हत्या इन्हीं लोगों ने की है। फलत: 'उच्च वर्ग का खोखलापन, नंगापन और सत्ता तथा व्यवस्था से चन्दे की एवज में इस नये वर्ग को जो ताकत, स्वरूप, हैसियत मिली है'[1] उसका कच्चा चिट्ठा नाटककार खोल कर रख देता है। यहां लेखक की चेतना राष्ट्र और उसकी समस्याओं की अन्धकारपूर्ण तहों तक उतरकर मूल में प्रच्छन्न मूल्यविहीनता की कच्चीनींव तक पहुंच जाती है।-

पुरुष- हम किस आजादी की सन्तान हैं? बोलो, यह कैसी, कौन सी आजादी है ?
युवती- वह जो सैंतालिस में आई ? यह वह जो काले ने गोरे सेपाई ?
डायरेक्टर- हां, हां, जिसने नये राजाओं को जन्म दिया वही आजादी ?
सरकारी वकील - जिसने इंसानों की जगह वोटरों कोपैदाकिया वहीमत देने की आजादी।
चपरासी- इसी आजादी के गर्भ से पैदा हुआ नया तंत्र जहां नहीं चलता आम आदमी का मंत्र।[2]

बीसवीं शताब्दी का सातवां दशक जहां विश्वरंगमंच पर भारत वर्ष को एक सम्मानपूर्ण स्थान दिलाने की दृष्टि से गौरवशालीदशक कहा जा सकता है वहां आंतरिक

1- अब्दुल्ला दीवाना। नाटक के निर्देशक के दौरान(श्याम अरोडा)पृ0 8

2- वही- पृ0 106

स्तर पर विखंडित राष्ट्रीय चेतना के क्रमश: उभार, विरोध एवं विकल्प के लिये कृत-संकल्प प्रजातंत्रीय मनीषा कादर्श भी कहा जासकता है। बंगलादेश का सार्वभौमिक गणतंत्र राष्ट्र के रूप में उदय इसका महत्वपूर्ण और गौरवशाली अध्याय कहा जा सकता है। दूसरी ओर सन् 1975 में प्रजातंत्रीय मूल्यों को किस प्रकार भारतीय राजनीति में संकट का सामना करना पड़ा, यह भी एकविचारणीय विषय है। इससे जो सत्य समक्ष आया वह यह कि स्वतंत्रता के तीस वर्षों के पश्चात् भी भारत की जनता स्वयं को लोकतंत्रीय पद्धति के अनुरूप ढालने में असमर्थ सिद्ध हुई है। उसने आजादी के नाम पर सत्ता लोलुप राजनेताओं और दलों की चोंच-भिडन्त देखी है, मौलिक अधिकारों के स्थान पर थोपा गया शोषण, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी और इन सबके ऊपर तंत्र द्वारा थोपी गई प्रश्नहीनता और यथास्थितिवाद को देखा है। तीस वर्ष की तथाकथित उपलब्धियों की कसौटी पर कसे जाने पर आज का मनुष्य केवल जीवन की मूल्यहीनता से ही साक्षात्कार करता है और नीति, राजनीति आदि के सम्बंध में उठनेवाले प्रश्नों के समाधान में वह विभ्रम में पड जाता है। तब उसके व्यक्तित्व में जैसे युग का उन्माद, समा जाता है। इस उन्माद की अभिव्यक्ति ही उनके नाटक 'नरसिंह कथा' में हुई है। वस्तुत: यह नाटक उस शासन की रीति-नीतियों के औचित्य पर अंगुली रखता है जिसने देश में प्रजातंत्रीय सिद्धान्तों को चुनौती दी थी और सन् 1975 से प्रतिकूल राजनीति की नंगी तलवार के नीचे जनता को मूक और दयनीय पशु बनने को अभिशप्त कर दिया था। इस नाटक में भी विकल्प का प्रश्न उभरकर सामने आता है। ऐसा प्रतीत होता है कि आपातकाल और उससे पूर्व उसके उमडते बादलों के नीचे खडे लाल ने इस समय को अपने लेखकीय व्यक्तित्व की कसौटी स्वीकार कर लिया था कि अपनी बात को वे कितने स सशक्त स्वर में कह सकते हैं। 'नरसिंह कथा' का प्रह्लाद ऐसे ही वातावरण के मध्य खड़ा है और इसी कसौटी पर अपने व्यक्तित्व को कसता है। विरोधी परिस्थितियों में वह जनशक्ति को किस प्रकार आह्वान करता है- यह उसकी, नाटककार की और इनके माध्यम से राष्ट्रीय मनीषा की सही कसौटी है। वस्तुत: विरोध के मध्य ही आत्मालोचन का अवसर, कर्म की प्रेरणा और सृजनात्मक अभिव्यक्ति के धरातल की

प्राप्ति होती है- इस सत्य की अभिव्यक्ति करनेवाली उपर्युक्त दोनों कृतियां - 'हरा समन्दर गोपीचन्दर' और 'नरसिंह कथा' इस युग की अन्य कृतियों के मध्य एक नवीन धारा (जिस पर विवेचन आगामी पंक्तियों में होगा) की ओर संक्रमण का मार्ग खोलती हैं।

अभिनव राष्ट्रीय चेतना केप्रति लेखक द्वारा उपर्युक्त रचनाओं में की जा रही संपूर्ण हलचल के मूल में है हमें हमारे सांस्कृतिक इयत्ता से जोड़ना, हमें हमारे 'समष्टि' से जोड़ व्यक्तिगत अहं की समाप्ति करना। अन्तत: राजनीति की आधारशिला उस देश कीसंस्कृति होती है। 'हरा समन्दर गोपीचन्दर' का नायक विक्रम भी इसीलिये राजनीति से भी गहरे समुद्र में उतर राष्ट्र की संस्कृति के बल पर पहुंचता है। -'जो समाज है, देश है, जल है, मनुष्य और उसकी अतल गहराई में जो चीज है वह है उसका मन, विचार और संस्कार।' आज के मनुष्य के इसी मन विचार और संस्कार की नींव कमजोर हो गई है। पश्चिम की व्यक्तिमूलकता को ग्रहण कर लेने पर आज का मनुष्य अहंवादी, भोगवादी और स्वार्थी हो गया है। उसका एक ही उद्देश्य है सतत हड़पना, उपभोग की वस्तु को प्राप्त करना और उसे भोगकर छोड़ देना। मानवीय प्रसंग उसकी इस प्राप्ति में केवल माध्यम है और अन्यथा वे उसके लिये बेमानी हैं। आज के मनुष्य के इस आत्म केन्द्रित व्यक्तित्व को उजागर करने के लिये 'मैं' और 'वह' की सृष्टि की गई है। और 'वह' 'मैं' दोनों एक दूसरे को प्रकटकरने हेतु कसौटी का कार्य करते हैं। वे सापेक्ष रूप में एक दूसरे को स्पष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। 'वह' जैसे 'मैं' के लिये एक कसौटी बन अन्तत: अपनानिर्णय देही देती है -

वह- अपने आप में बंद रहकर टहलने का पाखंड। टहलना है तो बाहर निकलो।

मैं- कहां ?

वह- जहां लोग हैं। (रस्सी खोल देती है) ऐसे क्योंदेखते हो ?

मैं- बड़ा अंधकार है। बड़ी गंदगी है।

वह- वही हमारा 'मैं' है।

मैं- नहीं, नहीं, बेहद खतरनाक है।

वह- वह है व्यक्तिगत।[1]

'वह' द्वारा 'मैं' को अंधकार से बाहर निकल आने का आह्वान मनुष्य को अपने वास्तविक स्वरूप की पहिचान करा उससे मुक्त होने की प्रेरणा देना है। मूल्यों से जुड़कर ही मनुष्य सामाजिक बनता है और ये ही मूल्य उसका 'व्यक्तिगत' हैं, यही बोध नाटक 'व्यक्तिगत' का प्रतिपाद्य है।-

मैं- कहाँ ले जाना चाहती हो ?

वह- जहाँ प्रकाश नहीं है---- जहाँ सिर्फ मैं नहीं है---जहाँ कुछ भी उस मूल्य के बिना संपूर्ण स्वतंत्र नहीं है।---जहाँ सिर्फ है---पर उसे अभी होना है।[2]

कसौटी का यह धरातल 'गुरु' नाटक में चाणक्य जैसे चरित्र द्वारा किया गया है। नाटक के अन्य चरित्र बाह्य समाज और उसके परिवेश में घूमकर भी तटस्थ दृष्टि से उस देखे गये 'बाध्य' को समझ नहीं पाते हैं। इसका कारण यह है कि इन चरित्रों ने जीवन को सच्चे अर्थों में नहीं भोगा है प्रत्युत अपने व्यक्तिगत अहं को ही बाह्य समाज या परिवेश पर आरोपित करके देखा है। इसी कारण उसके व्यक्तिगत अहं और बाह्य परिवेश दोनों में संघर्ष की स्थिति बनी रहती है। 'देखने' का अर्थ आज व्यक्ति के लिये अपनी भावना को दूसरे पर आरोपित करना हो गया है। इसीलिए 'मैं' और 'वह' का संघर्ष आज के युग की विडम्बना बन गई है। चाणक्य इस 'देखने' की प्रक्रिया को 'अहं' से उठाकर 'समष्टि' तक ले जाता है। इसके लिये वह एक कसौटी क तैयार करता है, ऐसी कसौटी जिस पर कसा जाकर व्यक्ति आत्म स्वरूप का ज्ञान करता है और मुक्ति प्रदान करनेवाली विधा को ग्रहण करता है। चाणक्य का यह गुरु ज्ञान ही प्रेक्षक और पाठक के लिये एक कसौटी का कार्य करता है - 'अगर मेरे कोमल पैरों में वह कुश न गड़ा होता तो मैं कौटिल्य न-हर्त्ता-+-च- इतना कठोर न होता। अगर नन्द की आखशाला में मेरा वह घोर

1- व्यक्तिगत-पृ0 70

2- वही- पृ0 70-71

अपमान न हुआ होता तो मैं कौटिल्य न होता । चन्द्रगुप्त को शूद्र मुरा दासी का पुत्र कहकर घायल न किया गया होता तो यहां इतनी हिंसा, कुचक्र, विश्वास घात न हुआ होता । स्थूल देह में जो कर्म-योग किया जाता है, सबका संस्कार सूक्ष्म देह में संचित रहता है । इसे भोगकर ही समाप्त करना पड़ता है । भोग अर्थात् देखना ।--- गुरु होना देखना है । जिसमें जितनी चोट है, जितना गहन अहंकार है- उसी के लिये यह राजनीति है । वही भोग राजसिंहासन'

अभिव्यक्ति का धरातल :

सन् 1971 से 1975 तक का युग कसौटी के जिस व्यापक धरातल पर खड़ा है, वह अनेक अनुत्तरित प्रश्नों के जन्म का कारण बना है । नैतिकता, राजनीति, प्रेम, विवाह और सामाजिक सम्बंधों के मध्य नाटककार एक ऐसा बोध प्राप्त करता है जो उसके जागरूक मानस में परिस्थितिजन्य वेदना उत्पन्न करता है । इसी मानसिकता के मध्य वह परिवर्तन के स्वर मुखर करता है । अभिव्यक्ति की यह चेतना सन् 1976 के रचनाकाल से प्रारंभ होती है । यह समय राजनीतिक मंच पर संकट का समय था जिसके विरोध में समग्र क्रांति की आवाज उठ रही थी । इस संकट के कारण रचनाकार के सामने अभिव्यक्ति का संकट भी गहरा होने लगा था । इस संकट को स्वीकार करने के उपरांत अभिव्यक्ति की अनिवार्यता को लाल ने समझा था । 'कलंकी' की रचना के समय से ही उनकी चेतना में अभिव्यक्ति के बीज फूट रहे थे । जिसके लिये उन्होंने चार सूत्र दिये थे -

1- नाट्य रचना का साहस
2- उसे प्रस्तुत करने अथवा कर्म करने का साहस
3- प्रतिष्ठित की छाया से लोगों को बाहर लाने का साहस
4- इन साहसों की सूली पर चढ़ने की कीमत चुकाने का साहस ।[1]

अभिव्यक्ति की यह प्रक्रिया लाल द्वारा रचित छठे दशक की रचनाओं से प्रारंभ होकर क्रमश: आगे बढ़ी है । लेकिन इस शताब्दी के सातवें दशक के उत्तरार्द्ध में

1- कलंकी-कलंकी-रंगमंच-एक प्रसंग-पृ0 6

तेजी से बदली परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में वैचारिक जागरूकता जब रचनाकार का एक अनिवार्य उत्तरदायित्व हो गया तो ऐसी स्थिति में अभिव्यक्ति का धरातल खुलने लगा। वे अनुत्तरित प्रश्न जो हमें कसौटी पर कसे जाने से प्राप्त हुए वो हमारे सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिकसभी क्षेत्रों में मोह- भंग का कारण बने। इस मोह-भंग से एक सत्य सामने आया कि हमारे यहां सभी क्षेत्रों के क्रिया-कलापों का नियमन करनेवाली जो धुरी है वह है राजनीति और वही हमारे संपूर्ण व्यक्तित्व को, सामाजिकस्वरूप को और बौद्धिकता को नियंत्रित करती है। ऐसी स्थिती में प्रबुद्ध रचनाकारों का क्षोभ इस राजनीति से होना स्वाभाविक ही था क्योंकि यही मनुष्य की नैतिकता, सामाजिकता और मूल्यों के निर्धारण की केन्द्रीभूत शक्ति थी। यही कारण है कि सन् 1976 से सचेतन होकर लाल का रचनात्मक व्यक्तित्व अभि-व्यक्ति के जिस धरातल पर खड़ा है उसमें रचनात्मक विद्रोह का स्वर विशेषत: सामयिक राजनीति को लक्ष्य करता दृष्टिगोचर होता है। इस काल के नाटकों में 'एक सत्य हरिश्चन्द्र', 'यक्ष प्रश्न : उत्तर युद्ध', 'गंगामाटी', 'सब रंग मोह भंग' 'पंचपुरुष', 'सगुन पंछी', 'राम की लड़ाई' उल्लेखनीय हैं। राष्ट्र की स्थिति का नाटककार ने गहराई से जब प्रेक्षण किया तो उसका मोह भंग हो गया और इसके साथ ही नीति, राजनीति, समाज और व्यक्ति के सम्बंध में उठ खड़े प्रश्नों के उत्तर की तलाश अपने ही आस-पास-विशेषकर पौराणिक सन्दर्भों के माध्यम से किया जाना प्रारंभ हुआ। सन् 1976 से लाल की रचनात्मकता के विकास को इस प्रकार लक्ष्य किया जा सकता है -

1- मोह भंग के साथ चुप्पी-भंग और अभिव्यक्ति का धरातल अधिक मुखर
2- सुबह होने का आह्वान
3- अंधकार में प्रकाश का मार्ग- माध्यम इतिहास और पुराण
4- अभिव्यक्ति का दर्शन-लीला

इस रचनागत संकट में जनता में चेतनाकी क्रांति फूंकने का कार्य 'एक सत्य हरिश्चन्द्र' के लौंका द्वारा हुआ है। लौंका की बेलाग अभिव्यक्तिऔर उसमें निहित

सत्ता का बेलाग विद्रोह समसामयिक राजनीतिकपरिस्थितियों में मूक जनता को एक प्रेरणा कही जा सकती है- 'हरिश्चन्द्र सदा अपने सत्य की परीक्षा देता रहे और तुम परीक्षा लेते रहो। मैंने इस नाटक में राजा बनकर देख लिया, जब तक तुम हो, हम केवल बनायेजा सकते हैं, अपने आप कुछ नहीं हो सके। पर अब बनने और होने का मर्म हमें मिल गया। चुप रह जाना हमारा विरोध था। पर तुम उस भाषा को नहीं समझ सके। सत्ता है तुम्हारे पास। हम सब तुम्हारे हाथ के सिर्फ कठपुतले थे। यह सारा नाटक तुम्हारा रचा हुआ था और तुम्हीं इसके सूत्रधार थे। चलो। अब तुम्हें देनी होगी परीक्षा अपने सत्य की।[1] देश की आपातकालीन परिस्थितियों के विरुद्ध लोकतंत्रीय अभिव्यक्ति की दूसरी सशक्त रचना है 'यक्ष प्रश्न उत्तर युद्ध' जिसमें शक्ति के बिखराव के प्रश्न और उससे उत्पन्न शक्ति के बलात अपहरण की समस्या को सामयिक परिप्रेक्ष्य में देखा गया है। सत्ता की तानाशाही के विरोध में उठ खड़े विकल्पों के विखंडन को यहां चुनौती है जिससे वे एकत्र हो अत्याचारियों के हाथ पड़ी शक्ति को प्राप्त कर सकें। यही समयकी मांग है, उसका खेमों में बंटी शक्ति के विखंडित रूप से प्रश्न है। इस नाटक में अभिव्यक्ति का धरातल इतनाप्रबल है कि वह समसामयिक राजनीति और उसमें मृत बने लोकतंत्र को एक संजीवन बूटी देपुनरुज्जीवन का आह्वान करता है। अभिव्यक्ति के लिये संदर्भ पौराणिक है किंतु वह इतना स्पष्ट हैकि सत्य पर एक झीना परदा मात्र बनकर रह जाता है- "--- पर यहचीख आज की है। अभी सुनायी पड़ रही है, अभी, यहीं।[2] सम्प्रत:, समय प्रश्न करता है और उसका उपयुक्त उत्तर हीसमय की अपेक्षा है। नाटककार ने ऐसे ही प्रश्नों केसमाधान देकर लोकतंत्रीय स्वर की अभिव्यक्ति प्रदान की है। अपने प्रथम प्रदर्शन 21 जून 1976 के बाद अनेक प्रशासनिकदबावों का शिकार यह नाटक सिद्ध करता है कि इसकी अभिव्यक्ति तीक्ष्ण है। जहां नाटक द्रोपदी को प्राप्त करने की प्यास में लिप्त एकाकी पाण्डवों की लिप्सा का वर्णन करता है वहां आज

1- एक सत्य हरिश्चन्द्र-पृ0 77

2- वही - पृ0 52

की दलीय राजनीति में सत्ता लिप्सा स्पष्ट उभरकर सामने आती है। अपने एकाकी पौरुष के अहं के कारण हीपाण्डव दु:शासन से द्रौपदी की रक्षा नहीं करपाते। क्या तानाशाही राजनीति के सत्ता हरण पर भी विरोधियों की असमर्थता इस पौराणिक प्रसंग की समसामयिक अभिव्यक्ति नहीं है? काल केप्रश्न का उत्तर एकमात्र युद्ध है, मुक्ति का युद्ध- यही इस नाटक का अभीष्ट है। अभिव्यक्ति की यह प्रक्रिया जब और गहराई तक पहुंचती है तो वह हमारी सांस्कृतिक चेतना के स्वरूप पर अपना मत व्यक्त करती है। लाल की चिन्तन प्रक्रिया का यह वह बिन्दु है जहां से वे अपनी सांस्कृतिक अस्मिता की खोज करते-करते उस मूल को पकड पाने में सफल हुए हैं। जो उनमें उस सांस्कृतिक चेतना के वर्ण-संकर हो जाने का बोध उत्पन्न करता है। हमारी पाश्चात्य जीवन दृष्टि और उससे उत्पन्न एक नयी अप्रासंगिक सांस्कृतिकताउन्हें इसके विरुद्ध रचनात्मक स्वर प्रदान करती है और इसी अभिव्यक्ति से प्रारंभ होता है उनके साहित्य में लीला-दर्शन जिसकी स्थापना करते हुए वेविभिन्न मत प्रकट करते हैं -

'जो अपनी बुनियाद है वही है अपना सत्य। यह न प्राचीन है, न आधुनिक है। यह केवल है। जो है उसका इतिहास क्या लिखा जाय? तभी तो हमारे यहां पश्चिमी ढंग से इतिहास लेखन, विचार की परंपरा नहीं थी और हमें इसी तरह की अन्य तमाम अप्रासंगिक बातों के कारण पिछडा हुआ करार दे दियागयाऔर हमने चुपचाप स्वीकार कर लिया।'

+ + +

'इस स्वीकृति का भयंकर परिणाम हमारे सांस्कृतिकजीवन पर पडा। इसकासहज और प्रत्यक्ष दृश्य हम भारतवर्ष के, विशेषकर आधुनिक हिंदी नाटक और रंगमंच में देख सकते हैं।---आधुनिक युग में जबअंग्रेजी चश्मे से नाटक को देखना चाहा, स्वभावत: तभी हमें अपना संस्कृत नाटक केवल प्राचीन लगा और अपनालोक रंगमंच प्रिमिटिव लगा।'

+ + +

`कृतित्व सम्भव है अपनी जड़, अपनी मिट्टी से उगने में। अपनी हवा, अपने परिवेश, अपनी परिस्थितियों में ही उसका विकास है-फूल और फल। खासकर नाटक और रंगमंच के संदर्भ में अपनी परंपरा से जुड़ने में ही कृतित्व की सारी संभावनाएं हैं।[10]

+ + +

प्रत्यक्ष प्रश्न क्या है- खासकर वर्तमान नाटक के संदर्भ में ? मतलब हमारा समाज और दर्शक वर्ग क्या है ? यह वह है जिसके रक्त में है संगीत, नृत्य, कथा का श्रवण और दर्शन-वृत्ति। इसके संस्कारों में है धर्म, विश्वास। इसकी प्रकृति में है मौज-मस्ती, इत्मीनान, `रिलैक्स्ड` रहने की इच्छा। यह जब कुछ देखता है यह सुनता है तो बंधा-बंधा, घुटता हुआ नहीं रहना चाहता। यह बुद्धि से परे होकर शुद्ध राग, लालित्य, भावना विश्वास में जीता रहना चाहता है।[1]

समग्रत: लाल ने अपने कृतित्व को पारम्परिक आधार देते हुए तदनुरूप अभिव्यक्ति प्रदान की है। इस दर्शन पर यथास्थान विचार होगा। यहां तो अभीष्ट अभिव्यक्ति के उस धरातल को पकड़ना है जो लाल की कृतित्व यात्रा का प्राप्य है। `गंगामाटी` और `सबरंग मोह भंग` इस लीलाभिव्यक्ति की मुखर नाट्य रचना है। `गंगामाटी` की प्रधान पात्रा गंगा उसी अभिव्यक्ति को उदघोषक बनकर समक्ष आती है जिसका विवेचन लीला दर्शन के नाम से लाल कर चुके हैं। उसका कर्म-देवल, कमल, शिवानन्द जैसे दिग्भ्रांतलोगों को मार्ग दर्शन देता है जो क्रमश: उपरिलिखितपंक्तियों का साक्ष्य है। -`जिस माटी से हम पैदा हुए, जिस माटी पर हम खड़े हैं, मूल यही है क्या ? यही क्या यह देख रही है ? मेरा पीछा करने वाला वह मेरा अदृश्य पुरुष अब दिखने लगा है मुझे। जैसे जीवन का पीछा धर्म कर रहा है। जीवनउससे भयभीत है। वह क्या है ? अभाव है----अभाव है--- जीवन जितना खाली, रिक्त रह गया है, वही धर्म बन गया है।[2]

1- गंगामाटी- पृ0 7, 66, 67

2- वही- पृ0 66-67

जैसा कि स्पष्ट है कि, लाल ने अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में इतिहास और पुराण के परिप्रेक्ष्य को स्वीकार किया है। इस सन्दर्भ में उनके लिए इतिहास और पुराण केवल अतीत की वस्तुएं नहीं प्रत्युत वे आज भी हमारे सम्मुख हैं। राम व कृष्ण आज भी हमारे मध्यस्थित हैं। पौराणिक सन्दर्भों की परिस्थितियां बदल गयी हैं और उन्हीं बदली परिस्थितियों में आज पौराणिक घटनाओं एवं व्यक्तित्वों की परख होनी चाहिये। ये पौराणिक आख्यान और व्यक्तित्व आज के साहित्य में अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं। आपातकाल में लेखक के पास अपने सन्देश को जन-जन तक पहुंचाने के लिये और पाठक तक अपने अभीष्ट को सम्प्रेषित करने के लिये पौराणिक सन्दर्भों ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अपनायी। वस्तुत: पुराण की कथाओं में वह सार्वकालिकता है जिसके कारण कहा जा सकता है कि वे आज भी हमारे मध्य स्थित हैं - 'आज का कवि या तो उसी पुरानी लीक पर आंख मूंदकर चले या पौराणिकता के इस रूप पर नया प्रकाश डाले, ऐसा प्रकाश जो हमारी नयी रुचि का और हमारी भावनाओं का जिसमें पौराणिक चरित्र अपने शुद्ध मानवीय रूप में हमारे सामने खड़े हों जिनके भीतर हमें अपने राग-विराग मिलें जिन्हें हम ठीक-ठीक वैसे ही पहिचान सकें जैसे हम उन लोगों को पहिचान लेते हैं जिनका प्रभाव किसी रूप में हमारे जीवन पर पड़ता है।[1] पौराणिक सन्दर्भों की इस सम-सामयिकता के प्रति नाटक 'सब रंग मोह भंग' में विशेष आग्रह व्यक्त हुआ है। इसमें अपनी संस्कृति को त्यागकर पश्चिमी जीवन दर्शन में मोहासक्त हुए भारतीयों की दयनीय स्थिति का चित्रण करते हुए नाटककार उनका मोह भंग करता है और सांस्कृतिक बोध भी जागृत करता है - 'तोड़ दो अपने घेरे को। रुककर देखो, कौन सड़क दौड़ा रहा है? बीच में कौन है? इस खेल का अन्त कहां है? अपने आपसे प्रश्न करो। जाना कहां था? ऐसा क्यों है? यह हो क्या रहा है? हमसे कराया क्यों जा रहा है? हे मां। हमें शिव का मस्तिष्क दो, कृष्ण का हृदय दो, राम का कर्म दो, गांधी जी का सत्य दो।[2] इस नाटक में अभिव्यक्ति का स्वर बहुत ही

1- हिन्दी के पौराणिक नाटकों के मूल स्त्रोत- शशीप्रभा शास्त्री, पृ0 405

2- सब रंग मोह भंग- पृ0 91

गुंफित है। संपूर्ण नाटक खेल सा प्रतीत होता है जिसके द्वारा गम्भीर राजनीतिक व सामाजिक प्रश्नों को उठाया गया है। खेल के ही माध्यम से सामाजिक स्तर पर पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बंधों पर 'सगुन पंछी' में अभिव्यक्ति दी गयी है - 'तोता-मैना में इतना विरोध है, तनाव है परलोक-मानस या उसकी सहज चेतना फिर भी उन दोनों की शादी करके यह दिखाती है कि कुछ भी हो, दोनों को कहीं मिलना ही है। जिन्दगी सारे मतभेदों, विरोधों के बावजूद चलेगी। प्रकृति और पुरुष अलग- अलग शक्तियाँ है पर जहाँ वे मिल रही हैं वहीं सृजन ~~और~~ है और यही है सगुन।[1] विरोधों के मध्य ही पति-पत्नी अपने स्वतंत्र चेता अस्तित्व को पा सकते हैं। और दोनों ही अपने अस्तित्व को मुखरता प्रदान कर सकते हैं। यही उनके 'होने' का सूचक है।-'पुरुष समझता है कि बस वही मनुष्य है। उसी की इच्छा, उसी का प्रभुत्व मनुष्य का लक्ष्य है। नारी को वह इच्छानुसार स्वीकार कर सकता है या त्यागकर सकता है। पर यह नहीं जानता कि प्रकृति का त्याग पुरुष के लिये आत्म हत्या के बराबर है।[2] समग्रत: यह नाटक स्त्री- पुरुष के सम्बंधों को स्वर देकर अभिव्यक्ति के धरातल पर सामयिक राजनीति के साथ-साथ सामाजिक विषय को भी स्पर्श करता है। ऐसे ही सामाजिक विषय को लाल ने अपने एक अन्य नाटक 'चतुर्भुज राक्षस' में अभिव्यक्ति दी है। पति और पुत्र द्वारा परित्यक्त दलित वर्ग की प्रतीक मैना का समाज के राक्षसों से संघर्ष और उसके लिये अपने अन्दर के नर और पशुतत्व को समन्वित करने की द्वन्द्वमूलक स्थिति से गुजरने की प्रक्रिया ' नरसिंह कथा ' के हुताशन का स्मरण दिलाती है। यहाँ तक मैना में अभिव्यक्ति का संकट बना रहता है। इस संकट का परिहार और 'राक्षस' के विरुद्ध संघर्ष की अभिव्यक्ति तब होती है जब मैना का पुत्र सुरजा शहर से फिर लौटकर गाँव आता है। यहीं से नाटक में दलित वर्ग का शोषण के विरुद्ध संघर्ष

1- सगुन पंछी- निवेदन- पृ0 15

2- वही- पृ0 92

प्रारंभ होता है और नाटक में अभिव्यक्ति का धरातल मुखर होता है । 'संघर्ष और फल' यही रचनाकार के व्यक्तित्वकी मुखरता का प्रमाण है । इस मुखरता का मार्ग संघर्ष के मध्य से है और यह संघर्ष रचनाकार को मनोबल प्रदान करता है । इसी मनोबल को जुटाने का कार्य नाटक 'पंचपुरुष' के बाबा ' नामधारी चरित्र द्वारा होता है और सिंधु ठाकुर जैसे अधिनायक के विरुद्ध लोकतंत्रीय संघर्षकी नींव रखी जाती है । चेतना के स्तर पर जनशक्ति का प्रबुद्ध होना और उससे अपनी स्थिति की समीक्षा करना- यही अभिव्यक्ति की दिशा में एक कदम है । 'पंचपुरुष' में यह बोध ही एक चरित्र उत्तमा के माध्यम से व्यक्त हो उठा है- 'ओह । यह बात है। आज समझ में आ गया । जो हमारा शोषक है, प्रताड़क, विनाशक, वही हमें महान्, पुण्यात्मा, दयालु लगने लगता है । कोठी, राजमहल, देवालय, सेना-सिपाही, इतनी सारी चमक-दमक, ताम-झाम से हमारी आँखें चौंधिया देता है । धर्मशास्त्र, देवालय भगवान के पीछे वह शत्रु अपना असली चेहरा छिपा लेता है ।[1]

युगगत परिवर्तन की दो दृष्टियाँ :

उपर्युक्त रचनात्मक-धरातल की विकास प्रक्रिया में दो दृष्टियाँ उभरकर सामने आती हैं - 1-मूल्यों(values) की दृष्टि, 2- रूप(Form) की दृष्टि ।

हमारे यहाँ स्वतंत्रता के बाद राजनीतिक, सामाजिक और नैतिक क्षेत्रों में मूल्यों का व्यापक परिवर्तन हुआ है । लाल के नाटकों में मूल्य-परिवर्तन की यह प्रक्रिया 'अन्धा कुआ' से लेकर वर्तमान तक, किसी न किसी रूप में देखने को मिलती है ।सामाजिक दृष्टि से 'अन्धा कुआ' की सूला जो अपने पति के अत्याचारों को चुपचाप सहनकर लेती है, 'सगुन पंछी' तक आकर पुरुष के समान अधिकार का दावा करने लगती है । इनके मध्य स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्बंधों का जो विकास हुआ है, उसे इस प्रकार लक्ष्य किया जा सकता है -

---

1- पंच-पुरुष- पृ0 80

1- 'मादा कैक्टस' के पुरुष (अरविन्द) का अहं और नारी (मीनाक्षी) की मौन-जलन ।

2- 'रातरानी' के पुरुष (जयदेव) की अहंग्रस्तता के उपरान्त नारी का उत्सर्ग ।

3- 'सूर्यमुख' के नारी-पुरुष (वेनुरती व प्रद्युम्न) का विपरीत भावों के मध्य गुजरना ।

4- 'करफ्यू' में स्त्री-पुरुष के सम्बंधों के मध्य लगा असहजता का करफ्यू ।

5- 'व्यक्तिगत' में 'मैं' और 'वह' (पुरुष और नारी के आदिम रूप) 'अहं' और 'पर' का द्वन्द्व ।

मूल्यों के परिवर्तन का दूसरा क्षेत्र है हमारा राजनीतिक जीवन । इसे भी लाल के नाटकों में सातत्य के साथ देखा जा सकता है । महाभारतोत्तर(राजनीति और इसके माध्यम से स्वातंत्र्योत्तर राजनीति) की विश्रृंखल स्थिति का चित्रण 'सूर्यमुख', राजनीतिक प्रश्नहीनता का दस्तावेज 'कलंकी', राजनीति के चक्रव्यूह में छटपटाती युवा-चेतना का चित्र 'मिस्टर अभिमन्यु' और लोकतंत्र के नाम पर विघटन की ओर बढ़ती राजनीति का लेखा-जोखा 'नरसिंह कथा', 'एक सत्य हरिश्चन्द्र', 'सब रंग मोह भंग' इत्यादि में व्यापकता और गहनता के साथ हुआ है । इस राजनीतिक अवमूल्यन के मूल में मनुष्य की स्वार्थ-लिप्सा और भोग की प्रवृत्ति की ओर संकेत है जिसे लाल ने अपने उपन्यास 'रूपाजीवा' के एक पात्र ईश्वरी द्वारा इस रूप में प्रकट किया है- 'उस स्वीकृति-अस्वीकृति से मेरा क्या होगा ? मैं स्वतंत्रता संग्राम लड़ा हूं । अब भोगूंगा उसे । मैंने त्याग किया है, अब मैं स्वतंत्र हूं । चाहे जो करूं । जिसे जैसे भोगना चाहूंगा, भोगूंगा, क्यों न भोगूं ? मैं अमुक्त नहीं मरना चाहता ।[1] अवमूल्यन के मूल में, स्वतंत्रता के संग्राम का वह अतिरिक्त आवेश था जो किसी दर्शन के अभाव में स्वतंत्रता के बाद एक नपुंसक पीढ़ी के जन्म का कारण बना ।- '----कुछ नहीं, महज भावुकता थी- सूरज के स्वर में दर्द उभर आया- जिसका बड़ी बेरहमी से शोषण

----

1 रूपाजीवा-पृ0 351

हुआ, नौकर को तो फिर भी तनख्वाह मिलती है- इन्हें तो कुछ भी, कहीं से भी नहीं मिला, न विवेक, न कोई दर्शन, न अनुभूति, न आत्म-गौरव । जो कुछ पास था, बस लुटा आये । कोई अंग से लंगडा, लूला और घायल होकर लौटा, कोई अपने मन से, कोई अपने चरित्र से और कोई अपने सर्वस्व से । स्वतंत्रता-संग्राम हम जीत आये लेकिन घर फूंककर परिवार को लुटाकर, अपने को वनवास देकर- जो अत्यन्त कोमल, शुभ और परम मानवीय था- उस सब की हत्या करके अब कहां जायं ?[1] अवमूल्यन की यह प्रक्रिया समाज और राजनीति में प्रवेश कर व्यक्ति के नैतिक पतन, मानसिक विक्षिप्तता और सर्वग्रासी निराशा तक पहुंची है । इसके कारण चारों ओर निर्वासन और आत्म विस्मृति, आक्रोश, शक्ति-अपहरण, अमानवता, प्रेमविहीनता, और अहंग्रस्तता देखने में आती है । `सूखा सरोवर`, `करफ्यू`, `अब्दुल्ला दीवाना`, `सब रंग मोह भंग` में इन्हीं को नाटकीय कार्य-व्यापार के मध्य अभिव्यक्ति मिली है ।

जीवन के उक्त भयावह साक्षात्कार ने रचनाकार को अपने परिवेश से मनुष्य के शनैः शनैः कट जाने की अनुभूति प्रदान की है । इसी भय से वह एक रचनात्मक विकल्प की ओर प्रेरित होता है । यही वह सामाजिक दायित्व है जिससे लाल भी रचनात्मक धरातल पर जुड़े हुए हैं ।

लाल की नाट्य लेखन की यात्रा में परिवर्तन की दूसरी भूमि है रूप अथवा फार्म । मूल्यों के परिवर्तन के समसामयिक ही लाल के रचनाशिल्प में भी परिवर्तन होता रहा है । जीवन की परिस्थितियां और मूल्य जैसे-जैसे संकुल होते गये हैं, वैसे-वैसे अभिव्यक्ति के रूप में भी परिवर्तन होता गया है । लाल के नाटकों में `फार्म` का परिवर्तन के निम्नांकित रूप देखे जा सकते हैं ।

1- यथार्थवाद- `अन्धाकुआ` और `रातरानी` की मंचीय कल्पना इसका सशक्त उदाहरण है ।

1- रूपाजीवा- पृ0 291

2- अयथार्थवाद- (1) मिथकीय- सूर्यमुख, कलंकी और मिस्टर अभिमन्यु (चरित्र में प्रच्छन्न अवधारणा के स्तर पर) इसके मुख्य उदाहरण हैं।

(2) लीला- एक सत्य हरिश्चन्द्र, नरसिंह कथा (मिथक संवलयित), व्यक्तिगत, सब रंग मोह भंग, गंगामाटी, चतुर्भुज राक्षस, पंच पुरुष और सगुन पंछी इसके प्रतिनिधि उदाहरण हैं।

(3) प्रतीकवादी- मादा कैक्टस, करफ्यू, अब्दुल्ला दीवाना इसके मुख्य उदाहरण हैं।

लाल के नाटकों का विभाजन :

लाल के संपूर्ण नाटक और समान्तर रूप से रचे जा रहे एकांकी उनके नाट्य व्यक्तित्व के क्रमिक विकास पर एक दृष्टि प्रदान करने की अपेक्षा करते हैं। इस तीन दशक के लेखन ने पाठकों व प्रेक्षकों में लाल के सम्बंध में एक धारणा बना दी है कि वे विपुल मात्रा में अपने पाठकों व प्रेक्षकों के लिये सामग्री प्रदान करने की सामर्थ्य रखते हैं। युग की रचनात्मक और सामयिक अपेक्षाओं को ध्यान में रख वे जो भी सामग्री प्रकाशमें लाते हैं उस पर समाज से प्राप्त अनुभव, उन अनुभवों को आन्तरिक स्तर पर भोगने के उपरान्त उस मानसिक स्थिति का अंकन जो वस्तुत: उन पर पड़े सामाजिक प्रभावों का प्रतिबिम्बन ही है, अपनी परम्परा को जीवित पदार्थ के रूप में रखने की उत्कट लालसा, चिन्तन को आकार प्रदान करने की इच्छा और संस्कार व परिवेश का सन्निवेश एक समग्र प्रभाव के रूप में दृष्टिगोचर होता है। इसी कारण उनके आज तक के नाटकों और एकांकियों का कतिपय समान दृष्टिकोणों के आधार पर विभाजन कर उनके मूल्यांकन के लिये एक आधार भूमि का निर्माण किया जा सकता है। इस विभाजन में किन्हीं दो नाटकों की प्रकृति के मध्य लक्ष्मण रेखा खींचना अतिवादी धारणा हो सकती है। किसी भी नाटक अथवा

एकांकी में एकाधिकप्रवृत्तियाँ स्वाभाविक रूप से पायी जा सकती हैं। इसीलिये लाल के नाटकों (जिनमें उनके एकांकियों का विवेचन भी प्रशंगवश कर दिया गया है) का जो विभाजन इन पंक्तियों का लेखक प्रस्तुत कर रहा है, वह आत्यन्तिक नहीं प्रत्युत नाटकों में प्रच्छन्न एक समग्र दृष्टि है। यह दृष्टि इन नाटकों के स्वतंत्र विवेचन में सहायक बन सकती है।

लाल के अद्यतन नाट्यव्यक्तित्व के समग्रत: चार दृष्टिकोण कहे जा सकते हैं- ये हैं - 1- विषय वस्तु, 2- विषय-वस्तु में प्रच्छन्न लक्ष्य, 3- नाट्य -शिल्प, 4- वह मन:स्थिति जो परिवेश के नाटककार पर पड़े प्रभाव का परिणाम है। इसे नाटककार की परिवेशगत दृष्टि कहा जा सकता है।

लाल के नाटकों की विषय वस्तु के दो प्रमुख स्त्रोत हैं- सामाजिक एवं पौराणिक। सामाजिक विषय वस्तु को नाटक की सामग्री के रूप में चयन करते समय नाटककार का चिन्तन वर्तमान और उसके स्वरूप के तटस्थ अंकन की ओर उन्मुख होता है और उनसे कतिपय प्रश्नों की जिज्ञासा करता है। सामाजिक जीवन का दर्शक और भोक्ता बनकर ही रचनाकार सत्य का सन्धान कर सकता है। यह सामाजिक दृष्टि यथातथ्य रूप में भी रखी जा सकती है, उस सामाजिक जीवन के मानसिक प्रभावों की व्यंजना के रूप में भी प्रस्तुत की जा सकती है अथवा लोक जीवन व लोक रंगों की भूमि पर अवस्थित करके भी प्रकट की जा सकती है। इन्हीं दृष्टियों के आधार पर लाल के नाटकों की सामाजिक विषय-वस्तु को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है- शुद्ध-सामाजिक जिनमें सामाजिक प्रश्नों को विविध कोणों के साथ तटस्थ दृष्टि से देखा गया है। पति-पत्नी के सम्बंधों के मध्य संघर्ष हो (अन्धा कुआ, रातरानी), राष्ट्र, समाज और व्यक्ति का त्रिकोण संघर्ष हो (रक्त-कमल), अथवा परिवार के मध्य निहितस्वार्थों और रक्त सम्बंधों के मध्य संघर्ष हो (तीन आँखों वाली मछली)- शुद्ध सामाजिक विषय-वस्तु की ओर संकेत है। इन्हीं सामाजिक प्रश्नों के कारण व्यक्ति के मानस में होने वाली उथल-पुथल और

मानसिक स्तरपर ही मूल्य संक्रमण की प्रक्रिया को दृष्टि में रखकर रचे गये नाटकों को मनो-सामाजिक नाटकों के रूप में रखा जा सकता है। परिवर्तन शील और नयी सामाजिक व्याख्याओं के कारण टूटते सामाजिक मूल्य और वैयक्तिक स्तर पर नवीन मूल्यों की स्वीकृति, पुरुष के अहं में नारी का आत्मदलन और विद्रोह की छटपटाहट, सौन्दर्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति और उससे उत्पन्न आत्म रति और समाज द्वारा थोपी गयी जीवन-पद्धति को व्यक्ति द्वारा स्वीकार करने की अभिशप्तता आदि ऐसे विषय हैं जो उनके अनेक नाटकों- कारफ्यू, अब्दुल्ला दीवाना, मादा-कैक्टस, सुन्दर-रस, दर्पन और एकांकियों- मैं आइना हूं, सुबह से पहले, मीनार की बाहें, हाथी घोड़ा चूहा, काफी हाउस में इन्तजार आदि में विवेचित हुए हैं। सामाजिक नाटकों की तीसरी धारा है लोक-सामाजिक नाटकों की। इनमें लोक जीवन की सुगन्ध और स्त्रोक-रंगों से पुष्ट सामाजिक विषयों को स्थान मिला है। नाटक तोता मैना या सगुनपंछी, चौथा आदमी, जादू बंगाल का ऐसे ही नाटक और एकांकियां हैं।

विषय की दृष्टि से दूसरे प्रकार की रचनाएं वे हैं जो पौराणिक सन्दर्भों को प्रकट करनेवाली हैं। इनमें कतिपय में पौराणिक घटनाओं, चरित्रों और वातावरण को उनकी समग्रता में वर्णित किया गया है और शेष में पौराणिक सन्दर्भों को प्रतीकों के रूप में रख उनके मध्य वर्तमान सामाजिक जीवन के प्रश्नों को उठाया गया है। प्रथम प्रकार के नाटकों और एकांकियों में सूखा सरोवर, सूर्यमुख, कलंकी, नरसिंह कथा, एक सत्य हरिश्चन्द्र, शरणागत, वरुण वृक्ष का देवता और रावण और दूसरे प्रकार में मिस्टर अभिमन्यु और काल पुरुष और अजन्ता की नर्तकी को लिया जा सकता है। प्रथम प्रकार की रचनाएं शुद्ध पौराणिक और दूसरे प्रकार की रचनाएं सामाजिक पौराणिक नाम से अभिहित की जा सकती हैं।

लाल के नाटकों और एकांकियों के विभाजन की दूसरी दृष्टि है वह निहित

---- उद्देश्य जो दो रूपों में उभरकर सामने आया है- समस्या अथवा प्रश्नमूलकता और शुद्ध मनोरंजन समस्या अथवा प्रश्न मूलक नाटकों एवं एकांकियों के भी दो रूप हैं- कतिपय नाटकों व एकांकियों में उठाये प्रश्न देश-काल- परिस्थिति विशेष से निरपेक्ष सार्वकालिक हैं। ऐसे प्रश्नों में नारी-पुरुष-सम्बन्ध भारतीय नारी के संघर्ष और इनमें प्रेम और विरोध की स्थिति का चित्रण हुआ है। अन्धा कुआं, मादा कैक्टस, रातरानी, दर्पन, सूर्यमुख, करफ्यू, व्यक्तिगत, सगुन पंछी अथवा गुड़िया, अब बादल आ गये, मीनार की बाहें, ठण्डी छाया, मोहिनी कथा आदि इसी प्रकार के नाटक और एकांकी हैं। ऐसे हीसार्वकालिक प्रश्नों की अन्य दृष्टि है व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के सम्बंध में उठाये गये प्रश्न जिनका चित्र विवेचन रक्त-कमल, सब रंग मोह भंग, तीन आंखों वाली मछली अथवा मैं आइना हूं, शरणागत, गली की शान्ति, औलादी का बेटा, बाहर का आदमी, दूसरा दरवाजा, गदर आदि में हुआ है। प्रश्न मूलक नाटकों व एकांकियों की एक धारा वह है जहां सामयिक समस्याओं को लक्ष्य किया गया है। ये सामयिक समस्यायें हैं स्वतंत्रता के बाद की राजनीति और उसमें नैतिकता के बोध के क्रमिक पतन की स्थिति का अंकन। कलंकी, मिस्टर अभिमन्यु, अब्दुल्ला दीवाना और दूसरा दरवाजा, हाथी घोड़ा चूहा, काफी हाउस में इन्तजार आदि ऐसी ही रचनायें हैं। ~~सम्मान्निक~~ सामयिक प्रश्नों को ही नाटककार ने सातवें दशक के नाटकों और एकांकियों में अपनी सम्पूर्ण जागरूकता के साथ उठाया है। सत्तरोत्तर राजनीति के सम्बंध में रचे गये नाटकों और एकांकियों में नरसिंह कथा, एक सत्य हरिश्चन्द्र, यत्र प्रश्न, सब रंग मोह भंग एवं एकांकी संग्रह 'खेलन हीं नाटक' में संकलित एकांकी। ये नाटक व एकांकी इस तथ्य को उजागर करनेवाले हैं कि नाटक अपने वर्तमान दर्शकों की अपेक्षाओं को पूर्ण करने वाला होता है।

उद्देश्य की दृष्टि से रचे गये नाटकों और एकांकियों में मनोरंजन का तत्व यों तो दर्शकों को बांधे रखने के लिये एक अपेक्षित शर्त है ही। किन्तु कतिपय नाटकों में तो यही प्रधान तत्व के रूप में देखने को मिलता है। ऐसे मनोरंजन तत्व

को समाहित करने वाले नाटकों व एकांकियों में लाल के ~~नन~~ दोनों बाल नाटक-जादू की छड़ी और बुद्धिमान गधा एवं धीरे बहो गंगा, हंसी की बात, दो मन चांदनी, शाकाहारी आदि मुख्य हैं।

नाट्य-शिल्प की दृष्टि से लाल के नाटकों एवं एकांकियों को तीन प्रमुख रंगरूपों में विभाजितकिया जा सकता है- यथार्थ, अयथार्थ एवं मिश्र (यथार्थ, अयथार्थ व अनगढ़ लोक रूप) नाटकों में शिल्प के ये विविध रूप ही उसकी मंच-परिकल्पना को साकार करते हैं। निर्देशक के लिये ये नाटक अपने विशिष्ट शिल्प द्वारा एक रंगदृष्टि प्रदान करते हैं। यथार्थ नाट्य शिल्प की दृष्टि से अन्धा कुआ, सुबह से पहले, औलादी का बेटा, बाहर का आदमी, शाकाहारी आदिमुख्य एकांकी हैं। अयथार्थ नाट्य शिल्प के अंतर्गत करफयू, अव्दुल्ला दीवाना, व्यक्तिगत, यक्ष प्रश्न आदि नाटक एवं दो मन चांदनी, दूसरा दरवाजा, हाथी घोडा चूहा, काफी हाउस में इन्तजार आदि एकांकियों को लक्ष्य किया जा सकता है। इन रंग रूपों के अतिरिक्त कतिपय नाटक एवं एकांकी ऐसे भी हैं जिनमें एक साथ यथार्थ, अयथार्थ और अनगढ़ लोक- तत्व का समावेश हुआ है। फलत: वे भंवीन प्रयोगों की अनेक सम्भावनाओं को जन्म देते हैं। इन नाटकों व एकांकियों में सूरा सरोवर, नाटक तोता मैना (सगुन-पंछी) चौथाआदमी, जादू बंगाल का, वरुण वृक्ष का देवता मुख्य हैं।

लाल की उपर्युक्त नाट्य कृतियों के विभाजन की एक अन्य दृष्टि है- वह विशेष मन: स्थिति जो किसी विशेष परिवेश (जो राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक-कैसा भी होसकता है) में सृजन करने के कारण बनी और जिसका प्रतिबिम्बन उनकी उपर्युक्त रचनाओं में हुआ। मन: स्थिति के विशेष दिशा में प्रेरित होने से नाटककार ने तीन विविध धाराओं में अपनी नाट्य कृतियों का सर्जनकिया है ये हैं- नागर धारा, लोक धारा और रोमाण्टिक धारा। सुन्दर रस, रातरानी, दर्पन, मादा कैक्टस, रक्त-कमल, मि0 अभिमन्यु, कलंकी, सूर्यमुख, व्यक्तिगत, करफयू, अव्दुल्ला दीवाना। जिनमें वर्तमान राजनीतिक, सामाजिक अथवा पारिवारिक सम्बंधों को उस परिवेश के मध्य खोजे जाने का प्रयत्न है जिनका रचनाकार स्वयं एक प्रत्यक्ष

द्रष्टा था । राजनीति का नागर-परिवेश के प्रबुद्ध जन को वैचारिक स्तर पर झकझोड़ना, महानगरीय परिवेश में टूटते जीवन मूल्यों और जन्म लेते नये जीवन मूल्यों की खोज और बुद्धिजीवी मानस लेकर युवाजन का रचनात्मक विद्रोह वे विविध पक्ष हैं जो नागरधारा से युक्त उनके उपर्युक्त नाटकों में विवेचित हुए हैं। मम्मी ठकुराइन, सुबह से पहले, मैं आइना हूं, केवल तुम और हम, 'खेत नहीं' नाटक के एकांकी, हाथीघोडा चूहा, काफी हाउस में इन्तजार और ऐसे ही अनेक एकांकी नागर-परिवेश के विभिन्न आयामों को समक्ष रखते हैं । इन्हीं नाटकों और एकांकियों में कतिपय ऐसे भी हैं जो स्वयं में उस लोक परिवेश को समाहित किये हुए हैं जो कहीं हिन्दू मिथकों के मध्य ध्वनित होता है कहीं ग्रामीण पृष्ठभूमि के मध्य उस जीवन के संघर्षों को प्रकट करता है तो कहीं लोक-रूढ़ियों के प्रयोग से युक्त है । अन्धा कुआ, नाटक तोता मैना (सगुन पंछी), एक सत्य हरिश्चन्द्र, नरसिंह कथा, सब रंग मोह भंग, गंगामाटी आदि ऐसे ही नाटक हैं । शरणागत, चौथा आदमी, जादू-बंगाल का, वरुणावृक्ष का देवता आदि ऐसे ही एकांकी हैं । यहां यह तथ्य ध्यातव्य है कि लाल के मिथिकल नाटकों की पौराणिकता को जहां आधुनिक जीवन दृष्टि का स्वर देने का प्रयास किया गया है वहां वे एक व्यवस्थित व सुनियोजित विवेचना के साथ 'प्रोग्रेसिवनेस' को जन्म देते हैं । फलत: उनमें नागर परिवेश का प्रभाव देखने को मिलता है । विपरीत इसके जहां पौराणिक सन्दर्भों को उनके मूल स्वरूप की रक्षा करते हुए लोक की आस्था का हेतु बनाया गया है और प्रेरकरूप में प्रस्तुत किया गया है, लोक- परिवेश का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । परिवेश के साथ-साथ वय की मानसिकता के अनुरूप नाटककार अपने प्रारंभिक लेखन में एक प्रकार की रोमांटिक धारा से गुजरता प्रतीत होता है । 'ताजमहल के आंसू' संग्रह के एकांकी, दो मन चांदनी, मीनार की बाहें, ठण्डी छाया आदि एकांकी और 'सूखा-सरोवर' नाटक इसी धारा से सम्बद्ध कहे जा सकते हैं ।

उपर्युक्त विभाजन को एक समग्र दृष्टि देने के लिये यहां लाल की नाट्य-साधना को विभिन्न दृष्टियों के सन्दर्भ के साथ प्रस्तुत किया जा सकता है । इससे उनके नाटकों में निहित दृष्टियों को समग्र रूप से समझा जा सकता है -

विषय की दृष्टि से — उद्देश्य की दृष्टि से

सामाजिक — पौराणिक — समस्या (प्रश्न) मूलक — मनोरंजन

शुद्ध सामाजिक — मनो सामाजिक — लोकसामाजिक — सार्वकालिक — सामयिक

भारतीय नारी-नारी, पुरुष सम्बंध (प्रेम-विरोध) — व्यक्ति-समाज व राष्ट्र सम्बंधी

नाटक
- अन्धा कुआ
- रक्त कमल
- रातरानी
- तीन आंखों वाली मछली
- गंगामाटी

एकांकी
- मम्मी ठकुराइन
- दो मन चांदनी
- बाहर का आदमी
- औलादी का बेटा
- हंसी की बात
- शाकाहारी
- गली की शांति
- गुड़िया
- हम जागते रहें
- वसंत ऋतु का नाटक
- केवल तुम और हम
- दूसरा दरवाजा
- फिर बताऊंगी
- धीरे बहो गंगा

नाटक
- सुन्दर रस
- मादाकैक्टस
- करफ्यू
- अब्दुल्ला-दीवाना
- व्यक्तिगत
- दर्पन

एकांकी
- सुबह से पहले
- मैं आइना हूं
- बादल आ गये
- मीनार की बाहें
- ठण्डी छाया
- मोहिनी कथा
- गदर
- हाथी घोड़ा चूहा
- काफी हाउस

नाटक
- अन्धाकुआ
- सुन्दररस
- मादा कैक्टस
- रातरानी
- दर्पन
- सूर्यमुख
- करफ्यू
- व्यक्तिगत
- सूखा-सरोवर
- नाटक - तोतामैना
- सगुनपंछी

एकांकी
- गुड़िया
- बादल आ गये
- मीनार की बाहें
- ठण्डी-छाया
- मोहिनी-कथा
- सुबह से पहले
- कालपुरुष और०

नाटक
- नाटक तोतामैना
- सगुन पंछी

एकांकी
- चौथाआदमी
- जादू बंगाल का
- तीनआंखोंवाली मछली

नाटक
- रक्तकमल
- सबरंगमोहभंग

एकांकी
- मैं आइना हूं
- शरणागत
- गली की शांति
- औलादी का बेटा
- बाहर का आदमी
- केवल तुम और हम
- दूसरा दरवाजा
- चौथा आदमी
- गदर
- वसन्तऋतु का नाटक

(परिशिष्ट) पौराणिक

शुद्ध पौराणिक

- नाटक
  - सूखा सरोवर
  - सूर्यमुख
  - कल्की
  - नरसिंह कथा
  - एकसत्य हरिश्चंद्र
  - यक्ष प्रश्न
- एकांकी
  - शरणागत
  - वरुण वृक्ष-देवता
  - रावण

सामाजिक पौराणिक

- नाटक
  - मि0अभि0
- एकांकी
  - कालपुरुष और
  - अजन्ता की नर्तकी

(परिशिष्ट) राजनैतिक, सामयिक

स्वातंत्र्योत्तर राजनीति और नीति

- नाटक
  - कल्की
  - मि0अभि0
  - अब्दुल्ला दीवाना
- एकांकी
  - दूसरा दरवाजा
  - हाथी घोड़ा चूहा
  - काफी हाउस में
  - वरुण वृक्ष का0
  - रावण

सत्तरोत्तर राजनीति। आपत्

- नाटक
  - नरसिंहकथा
  - एकसत्य - हरिश्चन्द्र
  - यक्षप्रश्न
  - स्वरंगमोहभंग
- एकांकी
  - खेल नहीं

(परिशिष्ट) मनोरंजन

- नाटक
  - जादू की छड़ी
  - बुद्धिमान गधा
- एकांकी
  - धीरे बहो गंगा
  - हंसी की बात
  - दो मन चांदनी
  - शाकाहारी
  - जादू बंगाल का

क्रमागत--

नाट्य-शिल्प की दृष्टि से

यथार्थ | अयथार्थ | मिश्र (यथार्थ-अयथार्थ अनगढ़ लोक)

नाटक

- अन्धाकुआ
- सुन्दररस
- रातरानी
- दर्पन
- सूर्यमुख
- कलंकी
- मिस्टर-अभिमन्यु
- गंगामाटी
- नरसिंहकथा

एकांकी

- मम्मी ठकुराइन
- सुबहसे पहले
- औलादी का बेटा
- बाहर का आदमी
- शाकाहारी
- शरणागत
- गली की शांति
- कालपुरुष और अजन्ता0
- मैं आइना हूं
- फिर बताउंगी
- धीरे बहो गंगा
- गुड़िया
- बादल आ गये
- हम जागते रहें
- रावण
- हंसी की बात
- मोहिनी कथा
- गदर
- वसन्त ऋतु का-नाटक

नाटककार की परिवेशगत दृष्टि से

नागर | लोक | रोमांटिक

नाटक

- सुन्दर रस
- रातरानी
- दर्पन
- मादा कैक्टस
- रक्त कमल
- मि0 अभिमन्यु
- कलंकी
- सूर्यमुख
- व्यक्तिगत
- करफ्यू
- अब्दुल्ला दीवाना

एकांकी

- मम्मी ठकुराइन
- सुबह से पहले
- औलादी का बेटा
- मैं आइना हूं
- बाहर काआदमी
- शाकाहारी
- गलीकीशांति
- कालपुरुष और0
- फिर बताउंगी
- धीरे बहो गंगा
- दसरा दरवाजा
- केवल तुम औरहम
- हाथी घोडा चूहा
- काफीहाउस में इन्तजार
- गुड़िया
- बादल आ गये
- हम जागते रहें
- हंसी की बात
- मोहिनी कथा
- गदर
- वसन्त ऋतु का नाटक

नाटक

- करफ्य
- अब्दल्ला दीवाना
- व्यक्तिगत
- यक्ष प्रश्न
- सबमोह भंग
- रक्त कमल
- तीन आंखोंवाली मछली

एकांकी

- दो मन चांदनी
- दूसरा दरवाजा
- हाथीघोडा चूहा
- काफी हाउस में
- केवल तुम और हम
- मीनार की बाहें
- ठण्डी छाया

नाटक

- अन्धा कुआ
- नाटक तोता मैना
- एक सत्य हरिश्चन्द्र
- सगुन पंछी
- नरसिंह कथा
- यक्ष प्रश्न
- सब रंग मोह भंग
- गंगामाटी

एकांकी

- शरणागत
- चौथा आदमी
- जादू बंगाल का
- वरुणवृक्ष का0
- रावण

(ट्रीटमेंट) मिश्र		(ट्रीटमेंट) रोमान्टिक	
नाटक	एकांकी	नाटक	एकांकी
सूखा सरोवर	चौथा आदमी	सूखा सरोवर	ताजमहल के आँसू
नाटक तोता मैंना	जादू बंगाल का		दो मन चांदनी
सगुन पंछी	वरुण वृक्ष का देवता		मीनार की बाँहें
			ठण्डी छाया